संदीप्ति

माणकचन्द रामपुरिया



नवयुग ग्रंथ कुटीर
बीकानेर

प्रकाशक
नवयुग ग्रंथ कुटीर
बीकानेर

मुद्रक
शिक्षा भारती प्रेस
बीकानेर

प्रथम संस्करण
जुलाई १९६८

मूल्य ८.०० रु०

आत्मनेपद

आत्म निष्ठ भावनाएं जब व्यंजित होती हैं, तब मनुष्य सम्पूर्ण सृष्टि के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है। विश्व के हर कण पर उसे अपना प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ने लगता है। जड़ चेतन में कहीं भी कोई विरोध नहीं। सब एक सूत्र में गुंथे दिखाई पड़ते हैं। लगता है मानो एक ही स्रोत से निःसृत सम्पूर्ण सृष्टि विभिन्न नाना रूपों में अभिव्यञ्जित हो रही हो। भावना की इसी अवधारणा पर गीतों की सृष्टि आश्रित है।

प्रदीप्त एकांत क्षणों में गुंजित आत्मनिष्ठ भावनाओं का संग्रह है।

जब भी दृष्टि पथ में ऊषा की मन्द मुस्कान आयी, जब भी कानों में उन्मुक्त निर्झर का गान गूंजा, सन्ध्या की सलोनी छटा जब भी दिखाई पड़ी, विहगों का कलरव जब भी सुनाई पड़ा—लगा जैसे किसी ने मन के तारों को झंकृत कर दिया हो। भावों की वीणा एकाएक मुखरित हो उठी। ऊषा की लाली होठों की मुस्कान बन गयी। पावस की हरियाली प्राणों का उल्लास बन गया। इतना ही नहीं, घनघोर काली रात की श्यामता आंखों में

सृजन बनकर चमकने लगी। कहीं कोई भेद नहीं। कहीं कोई उद्वेग नहीं। सम्पूर्ण सृष्टि एकाकार हो उठी।

गीत स्वयमेव गुंजित होने लगे। लगा, कोई गाता के माध्यम से स्वयं ही स्वयं का सृजन कर रहा हो। जीवन के सभी विभक्त तत्त्व इस एकात्मता में लीन हो गये।

और भावों की यह तल्लीनता मेरे गीतों की समीति है।

—माणकचन्द रामपुरिया

पृष्ठ-विवरण

ले लो मेरा पत्र	१
जाग गया मधुमास	३
निशि गहरी	५
सिन्धु अथाह	७
कोई आता	९
उत्पीड़न	११
भार	१२
सजाना	१४
असह्य	१६
क्षितिज	१७
संकल्प	१९
प्यास	२०
तेरी छवि अनमोल	२२
जमाना	२४
तुम आओगी	२६
अब न जगेगी प्यास	२८
कमी	३०
भाग्य बदल रही है	३२
३४	मर्म
३५	दीप शिखा
३७	आह्वान
३९	सह लूंगा
४१	बन्धन टूटे
४३	मन फूले
४५	मेरे पथ पर आते रहते
४७	देखो कभी
४९	जल रहा हूं
५२	व्यथा पुरानी
५४	संयोग
५६	अनुरोध
५८	बरसो
६०	घर का सब दरवाजा खिड़की खोलो
६२	दायित्व
६४	उन्मुक्तता

मन समझो तुम म्हारो मरना ६७
स्मृति ६९
बहती मेरी नाव ७०
बीणा का मन कसर जगता है ७२
नाच मन का मोर ७४
धिना धगा धगा नया है ? ७६
मिल आई अमराई ७८
क्या हुआ, जो कुछ नहीं मैंने किया ८०
दर्द क्या होता है ८२
मन मानी कुछ का निश्चय है ८४
मगता मन पर बोझ क्या ? ८६
मन जब ऊपर को चढ़ता है ८८
अच्छा लगता है तुम रहना ९०
कब देर न हुआ हूँ ९२
कीर्ति ९४
९७ मन पर कुछ अधिकार न समझो
९९ जमने दो विस्तार
१०१ खिन्न हृदय का
१०५ सुनसान डगर का मैं राही
१०७ झूम रही है फूलों की डाली याद नहीं है आती
१०९ कौन द्वार है आया ?
१११ उगता उगता मन जगता है
११३ उस दिन की है बात निराली
११५ चाँदनी मुस्का रही है
११७ गूँजती है रागिनी
११९ तुमको भी जो छोड़ चले थे
१२१ आज हमको गीत गाने दो
१२३ बाला [illegible] मुस्काती
१२५ [illegible] मन में जागते हैं
१२७ नाज गले की बात

स्वप्न मग साधना के गीत १२८
के आधार -गि
मान, जाना ह १३१
आप अपना घर गमा १ ,
निमाण
जब भी मन म चाह १२५
विस्मना
मधरा विलना महगा है १२७
अना और चलना है १ ६
डर म जाना नव चलना १४१
बुझा गीप मग निमि- १४
घार छाया
रात रात भर रचना १४४
श्यामल
सच्ची रात गुमाना १४७
गाना क स्वर फट न पाए १४९
आज मधुर गान गाए १५१

११३ आज विह्वल मन हमारा
११५ आज खुशी की यह घड़ी है
११७ जाग -गी अन्तर म हलचल
१५८ दुनिया भर का व्यथ
मना पर
१६१ मान मन गान क्या था ?
१६३ आज स-रा -र रही है
१६५ किनी काया
१६८ लिखना गए विहाग
१७० चाहना न मै मुझे
पहचानना
१७२ किना हृदय उदास
१७४ मन मान गीपक जलता है
१७६ क्या यह अनुराग
१७८ गीता का वरदान चाहिए
१८० आन वाला आ न सकेगा

हम दाना का [illegible] घरना पर १८२
[illegible] म आज पानी है १८४
रात बु[illegible] अगन जलना होगा १८६
उगा [illegible] सब मना १८८
राग रंग की १९०
आज मन को चाह [illegible] है १९३
१९३ राह
१९७ उलझ हैं [illegible] उलझन [illegible]
१९९ प्रेम की माला गिरवाऊँ
२०१ डाल रही [illegible]
२०२ कितना छोटा घर है

ले लो, मेरा पत्र

लै लो, मैरा पत्र।

कभी बैठकर नदी-किनारे
हँसते हों जब भिलमिल तारे
चुपके इसमें पढ़ लेना तुम—

भाव विकल सवत्र।
लै लो मैरा पत्र॥

मम-व्यथा इसकी भाषा है
विरह वेदना परिभाषा है
इसकी उपमा नही मिलेगी—

मित्र कही अन्यत्र।
लै लो मैरा पत्र॥

युग युग से मैं लिखता आया,
फिर भी नूतन दिखता आया
भावा के रूचररा-वरण में—

कितने बीते सत्र।
लै लो, मैरा पत्र॥

पर पुरातन कान जयी है,
हर युग की यह कथा नयी है
इसका ही नभ चँवर डुलाता—

ढोती वसुधा छत्र ।
ले लो मेरा पत्र ॥

जाग गया मधुमास

जाग गया मधुमास।

मेरे दृग में एक पहेली
बनी भावना सहज सहेली,
देख देख कर जगी नयन में—

सागर जैसी प्यास।
जाग गया मधुमास॥

प्राण-प्राण में कम्पन लाया
जाने कौन कहाँ से आया,
कली-कली पर निखर रहा है—

भौंरों का विश्वास।
जाग गया मधुमास॥

अद्भुत भुवन की हरियाली,
जाग उठी है पुरवाली
तरु का कोंपल कोंपल छलका—

नयनों का उल्लास।
जाग गया मधुमास॥

सृष्टि सदा फूलों से सुरभित,
भाव लहर में सदा निमज्जित,
प्रकृति-परी का सब परिवर्तन—
तेरा भृकुटि विलास।
जाग गया मधुमास ॥

निशि गहरी

लगती निशि गहरी ।

दिन के मुखरित नव प्रकाश में
कमनाशय के सुख-सुहास में—
कौन तिमिर आंखों में भरकर—
काजल-सी उतरी ।
लगती निशि गहरी ॥

पड़ता कहीं न कुछ दिखलाई,
आंख-आंख में ही अकुलाई,
मन पर कुछ चट्टानें जैसी—
लगती हैं ठहरी ।
उतरी निशि गहरी ॥

नीड़ों में खग आकुल सोये,
नर के कर्म विकल पन सोये,
पलकों के पनघट पर सजती—
सपनों की गागरी ।
उतरी निशि गहरी ॥

ऐसे में भी मैं एकाकी,
जाग रहा बन ज्योति शिखा की
टेक यही अब कटे अगम तम—
गूँजे विभावरी ।
लगती निशि गहरी ॥

सिन्धु अथाह

मन का सिन्धु अथाह।
कोई लगा न पाया इसको—
अब तक कुछ भी थाह॥
सबने देखा ऊपर-ऊपर
जीवन वैभव का स्वर भास्वर,
नही किसी ने देखी अब तक—
सागर मन की चाह।
मन का सिन्धु अथाह॥
अधर-अधर पर शीतलता है,
मादक सुरा को प्रेम सता है,
प्राणो के गह्वर में जलता—
प्रतिक्षण दारुण दाह।
मन का सिन्धु अथाह॥
कैसे किसको पास बुलाऊ,
किन सुधियों का दीप जलाऊ,

नहीं किसी की रही हृदय में—

अब कोई परवाह।

मन का सिन्धु अथाह॥

चलूँ सदा मैं अपनी धुन में

मिला न कुछ संग के गुन गुन में,

कोई अब तक जान न पाया—

कितनी लम्बी राह।

मन का सिन्धु अथाह॥

कोई आता

कोई आता है।

अंतर में कितना गहरा गम,
चौंक-चौंक उठता मन हरदम,

प्रतिक्षण लगता, कोई—

मुझे बुलाता है।
कोई आता है।।

जाने जाने क्यों चंचलता ?
मन में क्योंकर आज विकलता ?

कोई मेरे मन की—

बीन बजाता है।
कोई आता है।।

सागर में उद्दाम तरंगें,
प्राणों में उत्तान उमंगें,

लगता कोई मन से—

गीत सुनाता है।
कोई आता है।।

मैं धरती का निश्छल प्राणी,
अपनी माटी का चिर मानी,
लगता कोई स्वर को—
टूट कर जाता है।
कोई गाता है॥

उत्पीडन

खग-कुल आकुल सिसक रहे हैं
विकल हृदय की बात,
झुलस गया है नीड शान्ति का
धूमिल-धूमिल प्रात,
प्राण प्राण मे विह्वलता है
आंख दीन मलीन
लाख बजाया, बज न सकी पर
मेरे उर की बीन,
जहाँ जहाँ भी दृष्टि फिराधी
देखी सृष्टि उदास
अपने सपने ही जीवन का
करते थे उपहास,
सभी तरह से आज बना हूँ
मैं बेजार अधीर,
सीमाहीन महासागर-सी
मेरी पीर गभीर।

भार

भाव सुमन मेरे प्राणों का
दुनिया में मुस्कायें;
यौवन की जलती दोपहरी—
मैं घन बनकर छायें;
सपने आंखों में अकुलायें
गीतों में लहरायें;
बिजली बनकर शिखर शिखर पर
मुझे बुलाने आयें;

कोमल मन भोली किरणों का
भार नहीं सह पाता
कोई मेरे शून्य निलय में
अपनी बीन बजाता
नाच रही है हंसी खुशी में
जीवन तरु की पाती;
जाने कौन कहां की शोभा
मुझको आज बुलाती;

□ मनीन्द्र

लेकिन कैसे, जाऊं ऐसे
छोड भरा ससार,
तडप-तडप उठता है रह-रह
मेरे मन का प्यार,

सन्दीप्ति ।

अब है कैसी बाधा ?—आओ—
गीत सुनाओ ।
उर के बिसरे तारों को प्रिय—
आज सजाओ ॥

असह्य

रजनी के सूने प्रांगण में,
कुछ फूल खिले
पथ पर रुके बटोही से
हर बार मिले

आंख मिचौनी खेल रहे हैं
मीत पुराने
करते लाज बचाने को सब
लाख बहाने

सपनों का आलिंगन होता
मुग्ध हृदय है
अरुणोदय के शिखर शिखर पर
भव की जय है

सूनी घड़ियां सहज नहीं हैं
दर्द बढ़ातीं,
इन्हें त्याग कर जाता हूं मैं
रात सुनाती,

क्षितिज

है मुझ में विश्वास।
निश्चय भू पर झुक जायेगा
क्षितिज निकट आकाश।

तृप्ति मिले या चाह नहीं है
भरमाऊ परवाह नहीं है
यह अखण्डित मेरे मन में
इस धरती की प्यास।
है मुझ में विश्वास॥

मैं निर्बाध नदी की धारा
मिला न मुझको कभी सहारा
मेरा अपना मन ही मेरे—
जीवन का इतिहास ।
है मुझ में विश्वास ॥

सकल्प

अब मैं निश्चय घर जाऊंगा,
बहुत थका कुछ सुस्ताऊंगा
जलते नभ मे उडा अकेला,
देख न पाया कोई मेला
नीचे नीडो मे खग शावक
रहे चीखते जाने कब तक
किंतु हृदय में लगन लगी थी
कोई सूनी जलन जगी थी
पल भर को भी रुका नही मैं
बाधाओ मे झुका नही मे
उड़ता रहा अकेले ऊपर,
राते थे सब सपने भूपर
अब है उनकी याद सताती
सूने म आंखें अकुलाती
अत आज मैं लौट चलूंगा
पुन कभी नभ में निकलूंगा

पास

रहता कोई पास ।।

मेरा अन्तरतर भी इतना होता नहीं उदास ।।

मन में केवल सूनापन है

मरु-तरु सा सूखा जीवन है

लाती कभी न मन हरियाली जीवन में मधुमास ।

रहता कोई पास ।।

उजड़ा-उजड़ा-सा सब लगता

दिशा दिशा में धुआं सुलगता

धरती परती-सी लगती है जलता-सा आकाश ।

रहता कोई पास ।।

सृष्टि न कुछ भी धुंधली लगती
मन की छवि आंखों में जगती,
इतना पंकिल कभी न होता मानव का इतिहास ।
रहता कोई पास ॥

पास

रहता कोई पास ।।

मेरा मन तरतर भी इतना होता नहीं उदास ।।

मन में केवल सूनापन है
मरु तरु सा सूखा जीवन है
लाती कभी न अब हरियाली जीवन में मधुमास ।
रहता कोई पास ।।

उजड़ा-उजड़ा-सा सब लगता
दिशा दिशा में धुआं सुलगता
धरती परती-सी लगती है जलता-सा आकाश ।
रहता कोई पास ।।

तेरी छवि अनमोल

तेरी छवि अनमोल।

देखा उस दिन वहां खड़ी थी,

मादकता की एक कड़ी थी

कोई लगा न सकता उसका—

निज जीवन से मोल।

तेरी छवि अनमोल ॥

अद्भुत तेरे दृग की रेखा,

ऐसा मैंने रूप न देखा

तेरे चन्द्रवदन की आभा—

कौन सकेगा तौल ?

तेरी छवि अनमोल ॥

तुझ में जग की निधियां सारी

तुझ पर प्रकृति स्वयं बलिहारी

तेरे नयनों की मधु भाषा—

कौन सकेगा बोल ?

तेरी छवि अनमोल ॥

जहां-जहां भी देखी लाली
छनकी तेरी ही मधु प्याली,
रे अधरा की लाली से—
जग का लाल कपोल ।
तेरी छवि अनमोल ॥

जमाना

भूल न सकता उन्हें जमाना
जिनके कर्म विकल प्राणों में
चिर यौवन का मधुर तराना।
भूल न सकता उन्हें जमाना॥

चढ़ आये जो गिरि पर तन कर,
मथ डाले जो अगम समुंदर
लिया न जग से मोल कभी भी—
सीखा केवल गला कटाना।
भूल न सकता उन्हें जमाना॥

काँटों में फूलों के जैसा—

सीखा केवल है मुस्काना ।
भूल न सकता उन्हें जमाना ।।

वे ही धरती के रुदन हैं
त्रस्त-भीत मानव के दम हैं,

उनको ही आँखों के भाग—

रुकता नित उषा का दाना ।
भूल न सकता उन्हें जमाना ।।

तुम आओगी

निश्चय तुम आओगी।

अंतर में विश्वास प्रबल है
रोमों में उल्लास प्रबल है

आज नहीं तो कल मानस में—

सुरभि मधुर लाओगी।
निश्चय तुम आओगी॥

पास न कुछ भी मेरा अपना
बन बन कर मिटता है सपना

स्वप्न कभी साकार बनाने—

जब तुम मुस्काओगी।
निश्चय तुम आओगी॥

सूख न पाए मन का उपवन,
घिरते रहे गगन में सावन

चातक ऐसा [illegible] न रहना—

स्वाती बरसाओगी।
निश्चय तुम आओगी॥

गहरी नीद लगी आखो को,
शक्ति नही मन के पाखो को,
कन मुझ जगाने के हित—
आकर तुम गाओगी।
निश्चय तुम आओगी।

अब न जगेगी प्यास

अब न जगेगी प्यास ।

जग से मुझको बहुत मिला है
पतझर में भी हृदय खिला है
अब तो भरा-भरा लगता है—
नयनों का आकाश ।
हँसती अब मेरी परछाईं
खिलने लगी कभी अलसाई
अब तो मन के जलज खिले हैं—
फैला शुभ्र प्रकाश ।
तरु-तरु के पल्लव पल्लव पर
जगमग-जगमग किरणों का स्वर,
जड़ चेतन की साँस साँस में—
मेरा सहज सुवास ।

× × ×

तिमिर हृदय पर रहे न अंकित
बने न नरता कभी कलंकित

मैं प्रतिनिधि हूं मानवता का—

मनु का दिव्य विश्राम ।

जब न जागी प्यास ।

धारा बदल रही है

धारा बदल रही है।

कब से बैठा रहा उदास-सा
दृग में पलता रहा धुआँ-सा

सहसा पा संकेत तुम्हारा गति [illegible] गम्भीर हो रही है।

धारा बदल रही है।

फूल फूल पर लगे बजाने
गाते मन में मन के गाने

सूने प[illegible]र की मृदु पा[illegible] अब तो तरल रहा है।

धारा बदल रही है।

अब तो कोई दर्द नहीं है
होठों की छवि [illegible] नहीं है

फूल मना क्या शूलों तक से तबियत बदल रही है।

धारा बदल रही है।

मर्म

अपने दिल का दर्द न खोलो—
मन-ही मन सहलाओ।

कोई मन का दाग न देखे
पागल जग की चाल न देखे
जग तो केवल हँस सकता है—
फिर क्या व्यथा सुनाओ।

अपने दिल का दर्द न खोलो—
मन-ही-मन समझाओ।

कुछ फूल से नाजुक पलकें
मन के कोई भाव न झलकें
कोई भी कुछ कह न समझे—
आँसू नहीं बहाओ।

अपने दिल का दर्द न खोलो—
मन-ही-मन मुस्काओ।

आह्वान

किसका नयन सदा रोता है ?

किसका जीवन भार हुआ है

इस प्रभु को आधार हुआ है

आँसू में अपने नयनों के कौन सदा मोती खोता है ?

किसके जीवन नभ में छाई

कभी न ऊषा की अरुणाई

सोने का चम चम दिन किसका संध्या-सा काला होता है ?

किसने इतना जग में पाया

दुगना खो जिससे भरमाया

किसके मग में पग पग जग भी विकल समझ काँटा बोता है ?

✕ ✕ ✕

देख चुका मैं जग का जी भर

मुझ-सा कोई नहीं कहीं पर

मह लूगा

मह लूगा।
चाहे जो आघात मिले
म मह लूगा।
अतरतर की बातें सारी,
अपनपन की सब लाचारी
चाहे काइ सुने न फिर भी
कह लूगा।
मह लूगा।
किस भला अवकाश कि मेरी—
देख दृग म गन्न अधेरी
दुनिया की धारा में मैं भी
बह लूगा।
सह लूगा।
मन मान की बात नहीं जब
कटने वाली रात नहीं जब

बन्धन टूटे

उनके अब सब बंधन टूटे।

छल से जिनकी नाव भरी थी

छिद्रों वाली नगी तरी थी

ममता में कसकर जकड़े थे—

अपने बन जो सपन झूठे—

उनके अब सब बंधन टूटे।

तस्वीरों को उड़ी पड़ी थी

धोखे की दीवार खड़ी थी

धीरे धीरे उतर प्राण तक—

मन जग जो रंग मटुके—

उनके अब सब बंधन टूटे।

जिनके कारण अपने घर से—

टूट चुके थे हम भीतर से—

जिनके दुविधा सम्भाषण में—

भगते जीवन के रस जूठे।

उनके अब सब बंधन टूटे।

दायित्व

[१]

एक दिन इस विश्व की मिट
जायगी नि[illegible] जवानी,
याम पंखों पर न होगा—
एक दिन मेरी कहानी

[२]

क्षितिज के उस पार होगा—
दूर मंज़िल का किनारा
वेदना में राह भूले
को मिलेगा क्या सहारा ?

[३]

मूक नयनों से टपकता—
दग्ध मन का ज्वार होगा
चेतना की हर किरण पर—
मृत्तिका का क्षार होगा

[४]

व्याप्त सूनापन चतुर्दिक्—
भूमि रह-रह रो रही है
शुष्क दूर्वों के दृगों का—
आँसुओं से धो रही है

[५]

भाग वीरान हो गई है
हार कोई मन न पाना
नाश की सम्भावना पर
साँस का स्वर लग न पाना

[६]

ज़िन्दगी अकुला रही है—
वेदना की रागिनी है,
गा रही है, अग्नि वर्षा—
हो रही है चाँदनी में

[७]

चाँद सूरज हँस रहे हैं—
मंच पर स्वागत करन
देश पर मनुवंशज के—
नाश का दायित्व धरन,

दायित्व

[१]

एक दिन इस विश्व की मिट
जायगी नि[illegible] जवानी,
थाम पगों पर न होगा—
एक दि[illegible] मेरी क[illegible]नी

[२]

क्षितिज के उस पार होगा—
दूर मंजिल का किनारा
वेदना में राह भूले
को मिलेगा क्या सहारा ?

[३]

मूक नयनों से ढुलकता—
दग्ध मन का ज्वार होगा
चेतना की हर किरण पर—
मृतिका का क्षार होगा

व्याप्त सूनापन चतर्दिक—
भूमि रह रह रो रही है
शुष्क फूलों क दलों को—
आँसुओं से धो रही है

दायित्व

[१]

एक दिन इस विश्व की मिट
जायगी निष्ठुर जवानी,
धाम पंथों पर न होगी—
एक दिन मेरी कहानी

[२]

क्षितिज के उस पार होगा—
दूर मंजिल का किनारा
वेदना में राह भूले
को मिलेगा क्या सहारा ?

[३]

मूक नयनों से ढुलकता—
दग्ध मन का ज्वार होगा
चेतना की हर किरण पर—
मृत्तिका का क्षार होगा

उन्मुक्तता

कहने की क्या बात, समझ लो मन से मन की बात ।।
हर रोज यही तो होता है
सब भार हृदय ही ढोता है
काटे कटती कहाँ नयन मे ऐसी काली रात ।
कहने की क्या बात समझ लो मन से मन की बात ।।
भू पर हरियाली गीली है,
दूवा की आब पनीली है
कैसे फिर रुक पाय मेरी आखों की बरसात ।
कहने की क्या बात समझ लो मन से मन की बात ।।
मिलने की जब तक दूरी है,
मुझ मे तुझ मे मजबूरी है
तब तक कभी न छिप पायेगा प्राणों का जलजात ।
कहने की क्या बात समझ लो मन से मन की बात ।।

x x

चाहा बहुत कि नभ मुस्काये
मन का पाहुन मन से आये

—

लेकिन जब तक रात न बीती, जगा न मन का भाग।
कहने की क्या बात समझ लो मन से मन की बात॥

मत समझो तुम इसको सपना

मत समझो तुम इसको सपना—
जीवन का रूप दिखाता हूँ।

काँटों में जिसके पर उलझे
बड़े कष्ट मे थे जो सुलझे

उड़ती हुई तितलियां का मन
रक्तिम है, तुम्हें बताता हूं।
मत समझो तुम इसको सपना—
जीवन का रूप दिखाता हूं॥

पर्वत का फोड बहा निर्झर
सिंचित जिससे भव का ऊसर,

इसकी गति मे जीवन का स्वर
आओ, नवगीत सुनाता हू।
मत समझो तुम इसको सपना—
जीवन का रूप दिखाता हू॥

दूर गगन में मूक सितारा,
जिसे नही था कही सहारा,

उसके अंतर की करुणा को—
पुष्प पर मैं भाव जगाता हूँ।
जीवन का रूप दिखाता हूँ ॥

मेरी तो है कथा अधूरी
सपनों में जीवित पूरी

भाव सुमन नित अर्पण करता—
अपना मन को बहलाता हूँ।
जीवन का रूप दिखाता हूँ।

स्मृति

आज भी है शेष तेरे प्यार की अंतिम निशानी।
व्योम में तारे अगिन नहीं चलते,
दीप की लौ पर शलभ चुपचाप जलते,
रात भर मन को नयन को स्वप्न छलते
आज भी चातक सुनाता प्यार की अपनी कहानी॥

सिन्धु में बड़वा भयंकर जल रहा है,
दिन न जाने टूटता क्या ढल रहा है
'पी कहाँ'—कहता पपीहा ले नयन में आज पानी।

खो गया अब जिन्दगी के प्यार का क्षण,
जल उठी 'धू धू' चतुर्दिक आग भीषण
व्यर्थ सा लगने लगा अवशेष जीवन,
राख उर में सिन्धु दृग में और यह जलती जवानी।
आज भी है शेष तेरी याद की अंतिम निशानी॥

उसके अ तर की करुणा को—
भू पर मैं ला जाता हू ।
जीवन का रूप दिखाता हू ॥

/ × ×

मेरी तो है व्यथा पुरानी
सघर्षों मे जीवित प्राणी
भाव सुमन नित अपण करता—
अपन मन को बहलाता हू ।
जीवन का रूप दिखाता हूँ ।

स्मृति

आज भी है शेष तेरे प्यार की अंतिम निशानी।
व्योम में तारे अगिन प्रतिदिन जलते
दीप की लौ पर शलभ चुपचाप जलते
रात भर मन को नयन को स्वप्न छलते
आज भी चातक सुनाता प्यार की जलती कहानी॥

सिंधु में बड़वा भयंकर जल रहा है
दिन न जाने ढूंढता क्या ढल रहा है
पी कहाँ कहता पपीहा ले नयन में आज पानी।

खो गया जब जिंदगी का प्यार सारा
जल उठी धू धू चतुर्दिक आग भीषण
व्यर्थ सा लगने लगा अवशेष जीवन
राख उर में सिंधु दृग में और यह जलती जवानी।
आज भी है शेष तेरे प्यार की अंतिम निशानी॥

बहती मेरी नाव

बहती मेरी नाव।

चाहे हो जैसी भी धार,
महाप्रलय का भीमाकार,

रुक न सकेगी नाव सिंधु का—

जैसा रहे बहाव।
बहती मेरी नाव॥

चाहे सबने कुछ पहचान
गूंजे कितने विह्वल गान;

रुकी न फिर भी मेरी नैया—

छूटा सारा गांव।
बहती मेरी नाव॥

कितने आये लेकर प्यार
लेकर मृदु कलियों का हार

लेकिन मन में जाग न पाई—

अपने से कुछ चाव।
बहती मेरी नाव॥

☐ मनीषि

अब तो नाव पड़ी मझधारें,
सभी तरह से है लाचार,
लौट न सकता, अब तो मेरे—
जीवन का है दांव।
बहती मेरी नाव।

वीणा का जब स्वर जगता है

वीणा का जब स्वर जगता है।

प्राणों का जब सौरभ खुलता,
आँखों का काजल तम धुलता

नूतन भाव कुमुद मुस्काते—
रस में बरबस मन पगता है।
वीणा का जब स्वर जगता है।

बन जाता तन मन मतवाला
रोम-रोम ने पा हो ाला

उड़ उड़कर खग डाल डाल को
मधुर प्रीत से आ लगता है।
वीणा का जब स्वर जगता है।

कोई सूखा वृक्ष न रहता
कोई रूखा प्राण न दहता,

हँसती परती धरती सुनकर—
सुखसागर पर डग टगता है।
वीणा का जब स्वर जगता है॥

नयन गगन में छवि उतराती,
नई विधा मादकता लाती,
मन को कितनी राहत मिलती—
भव का रूप निखर फबता है।
वीणा का जब स्वर जगता है॥

नाचे मन का मोर

नाचे मन का मोर।

भावों के घन घिरे नयन में

सिरहन कम्पन वन-उपवन में

खिलने लगे अचानक सपने—

मेरे मन की कोर।

नाचे मन का मोर॥

भर भर कर उर धनक रहा है

सघन गगन तक सनक रहा है

आँसू दृग से बरस बरस कर—

करते व्याकुल शोर।

नाचे मन का मोर॥

रुके न इसका मादक नर्तन,

रुके न क्षण क्षण का परिवर्तन,

रहे हृदय आशा से पूरित—

रहे घिरे घनघोर।

नाचे मन का मोर॥

चम चम चमके चपना का पर,

मुखरित हो भावों का अंतर,

नयन नयन में रहे उमड़ते—

सपने गीत विभोर।

नाचे मन का मोर।

चिन्ता कैसी, कैसा भय है ?

चिंता कैसी कैसा भय है ?
डर क्या डरना किससे कैसे ?
सब अपने हैं ।
एक डाल पर मिले अचानक
सब सपने हैं ।

मुझको यहां किसी से कोई
मतलब कैसा क्या परिचय है ?
चिंता कैसी, कैसा भय है ?

मुझको चलना है चलता हूं
आगे मेरे,
नहीं जानता ज्योति मिले या—
तम के घेरे,

मेरे दृढ़ चरणों के आगे—
पथ है बेदम मन निर्भय है ।
चिंता कैसी, कैसा भय है ?

राह फूल से भरी मिले या
कांटे अनगिन
झंझा का हो वेग प्रबल या
मधुऋतु पलछिन

सब कुछ है स्वीकार मुझे जब
नहीं हृदय में कुछ संशय है।
चिंता कैसी, कैसा भय है?

क्या हुआ, जो कुछ नहीं मैंने किया

क्या हुआ जो कुछ नहीं मैंने किया।

सृष्टि इतने काम से भरती चली
हर दिवस के बाद फिर रजनी ढली

कौन जिसने पाट सब अन्तर दिया।
क्या हुआ जो कुछ नहीं मैंने किया।

थे हजारों आज उनका कुछ नहीं
है न उनके नाम पर पत्थर कहीं

मौन में भी क्या भला जग से लिया।
क्या हुआ जो कुछ नहीं मैंने किया।

मत जताओ प्यार मुझको छोड़ दो
नेह का सम्बन्ध सारा तोड़ दो

आंसुओं से घाव अन्तर का सिया।
क्या हुआ, जो कुछ नहीं मैंने किया?

देखें क्या होता है

देखें क्या होता है।

भरता दृग से ताप हृदय का,
इंगित जीवन के परिचय का
दाह दग्ध अन्तर अनजान—
भार अतुल ढोता है।
देखें क्या होता है।

सून में जग नदी किनारे
डूब रहे हों झिलमिल तारे
कोई जगकर दुर्वादल पर—
जाने क्यों रोता है।
देखें क्या होता है।

स्वप्न नयन से कभी न छूटे
सुरभि गन्ध का बंध न टूटे,

कोई दृग के पावन जल से—

अन्तर को धोता है।

देखें क्या होता है।

अन्त सभी कुछ का निश्चय है

अन्त सभी कुछ का निश्चय है।

कोई सच मान ना माने
कोई मेरा तेरा जाने,

लेकिन सत्य यही है जग में—
रात ढलेगी आज उदय है।
अन्त सभी कुछ का निश्चय है॥

अम्बर हँसता ऊषा आती
तारावलियाँ तक मिट जाती;

कुछ भी नित्य नहीं है जग में—
सदा काल की ही बस जय है।
अन्त सभी कुछ का निश्चय है।

पावन मन का गीत सुनाना,
निर्गुन कर्म साधते जाना

इस दुनिया में यही अकेले—
जीवन भर का मंगलमय है।
अन्त सभी कुछ का निश्चय है॥

लगता मन पर बोझ धरा है

लगता मन पर बोझ धरा है।
सिसक सिसक कर अन्तर रोता
सूख गया निर्झर का सोता

राख बने सपनों मे खोये—
उर का सूखा घाव हरा है।
लगता मन पर बोझ धरा है ॥

मेरे भावो के आगन मे
जलते भू के नयन-नयन मे

लगता कोई इन्द्रधनुष-सा
छुपके चपके-से उतरा है।
लगता मन पर बोझ धरा है ॥

जिसके आगे राह नही है
गहराई की थाह नही है,

उसका शुभ्र प्रकाश अखण्डित
मर मानस-सा गहरा है।
लगता मन पर बोझ धरा है॥

मन जब ऊपर को चढ़ता है

मन जब ऊपर को चढ़ता है
धीरे-धीरे पग बढ़ता है
राही पथ पर चलने वाला
अपनी धुन पर ही मतवाला

चलता ही चलता है निशिदिन
फूल मिलें या काँटे अनगिन
ऊबड़-खाबड़ राहों पर भी
अपनी कलुषित चाहों पर भी,

रोक लगाता, पथ सुलझाता
धीरे धीरे बढ़ता जाता
उसको कोई सुना न पाता
कोई उसे न पथ दिखलाता

अपने आप सदा चलना है,
मोम बना कर खुद गलना है

कभी कहीं खिडकी खुलती है
आँख किसी से जा मिलती है
फिर भी इस पर ध्यान न रखता,
मन मान का मान न रखता
वह तो धीर सिपाही पथ का
आरोही है पौरुष रथ का,
उसकी सारी बात निराली।
लायेगा वह भू पर लाली॥

मन जब ऊपर को चढता है

मन जब ऊपर को चढ़ता है
धीरे धीरे पग बढ़ता है

राही पथ पर चलने वाला
अपनी धुन पर ही मतवाला।

चलता ही चलता है निशिदिन
फूल मिन या कांटे अनगिन

ऊबड़ खाबड़ राहों पर भी
अपनी कलुषित चाहों पर भी।

रोक लगाता, पथ सुलझाता
धीरे धीरे बढ़ता जाता।

उसको कोई सुझा न पाता
कोई उसे न पथ दिखलाता।

अपने आप सदा चलता है,
मोम बना वह खुद गलता है,

अच्छा लगता है चुप रहना

अच्छा लगता है चुप रहना ।

दुनिया कहती ज्ञान नही है,
जीने का अभिमान नही है
मैं सब की सुनता रहता हू—
नही जानता क्या है कहना ।
अच्छा लगता ह चुप रहना ।

जो आते आघात लगाते
हम दर्दों के गीत सुनाते
कभी कभी अच्छा लगता ह —
सब चुपचाप हृदय पर सहना ।
अच्छा लगता है चुप रहना ।।

मिट जायेगा धरती का तम,
[illegible] ज्योति रहेगी हरदम,

वीर व्रतों के लिए सहज है—
क्रुद्ध धार पर चढ़कर बहना।
अच्छा लगता है चुप रहना॥

बहुत देर से रुका हुआ हूं

बहुत देर से रुका हुआ हूं।
भरा हृदय है झुका हुआ हूं।

कौन मगर मुझको पहचाने ?
कौन भीड़ में किसको जाने ?

सब अपने में लीन यहां है
मतलब से तल्लीन यहां है

कोई आंख तरेर रहा है
कोई आंख फेर रहा है

कोई जल्दी जल्दी चलता,
कोई कहीं किसी को छलता

यह तो है बाजार अनोखा
यहां सभी खाते हैं धोखा,

फिर भी कोई चेत न पाता
एक दूसरे को समझाता

फिर भी ऐसा हाल फिर न।
कोई नहीं समझने वाला

सब हैं पंडित भारी ज्ञानी,
तुनुक मिजाजी हैं अभिमानी

ढंग में अलग अलग है झांकी
जान जितनी मंजिल बाकी

देख रहा हूं नंगा तमाशा,
कहीं विहंसता कहीं रुआँसा

डर है हृदय न बन जाऊं मैं।
द्रष्टा बनकर पछताऊं मैं॥

सदीप्ति

कल अभी कुछ रात भीगी—
दर्द-सा कुछ जाग आया,
क्या बताऊँ कौन थी वह—
दीप था किसने जलाया ।

उस अकेले सूने क्षण में
था न कोई पास मेरे
एक सूनी याद कोई
थी मुझे चुपचाप घेरे,

रोम के हर कण मुक्त
बनना रहे उन्मेष ही हूँ।
मैं पिया के देश में
आया हुआ संदेश ही हूँ।

सुन अचानक जग गया मैं—
भाव का उन्माद छाया
इस अमावस की निशा में—
भी अनोखा चाँद आया,

याद ही मैं दे गई थी
स्नेह की सौगात-सी
डूब कर मन पढ़ रहा था,
प्यार की अनमोल थाती

जब कभी भी मीत मैं—
एकांत पाता याद आती
याद की तस्वीर कोई
वक्ष से चुपचाप लगती

और लगता स्नेह-पाती
प्यार के संदेश से भर—
दे गई पुरवा जगाकर—
दीप्ति का संवेग सत्वर ॥

मन पर कुछ अधिकार न समझो

मन पर कुछ अधिकार न समझो।

सभी जगह जाकर थक आया
अपने पग पग पर भरमाया

मन न मिला न मन का साथी—
मेरा यह संसार न समझो।
मन पर कुछ अधिकार न समझो।

पीड़ा जगती गीत बनाती
अंधकार में ज्योति जगाती

मेरे प्राणों की घड़ियों को—
भावों का उद्गार न समझो।
मन पर कुछ अधिकार न समझो।।

पथ का हारा बदल चलना,
अपनी ही छलना में गलना।

मुझे आरती की थाली का—
पुण्यव्रती धनसार न समझो।
मन पर कुछ अधिकार न समझो।

जमने दो विश्वास

जमने दो विश्वास।

माना शक्ति बड़ी सीमित है
शूलों से अन्तर परिचित है
फिर भी क्षीण न हो सकता है—
प्राणों का उल्लास।
जमने दो विश्वास।

चाहे हों आँखों से ओझल
साध न उर के होंगे निष्फल
मन का पंछी तोल रहा है—
पाँखों में आकाश।
जमने दो विश्वास।

गीला गीला नलिन विलोचन
अंजन तक बन गये निरंजन

जाने कब से टूट रहा है—
भूतल का इतिहास।
जमने दो विश्वास॥

चित्र हृदय का

चित्र हृदय का
पल-पल दीपित
ज्योतित अम्बर
भूतल सीमित

घन घिरते जब
उमड़ - उमड़ कर
खिल उठता है—
तरु तृण भू पर,

जब निदाघ की
लू इठलाती

धरती क्षण-क्षण
जब अकुलाती,

कवि का अन्तर
व्याकुल होता
अपना सारा
सम्बल खोता;

कोई मन के
प्राण शिखर पर
दीप्ति नई हो
आता सत्वर,

तब मन सहसा
भर जाता है
भाव दिवा का
भर जाता है,

कहते सब हैं
पौरुष जागा
मानव ने है
आलस त्यागा,

यही समय है
उज्ज्वलता का
जीवनभर की
निर्मलता का,

इसी समय पर
सब न्योछावर,
करुणा सारी
दृग का सागर,

इसको ही जग
कहता रहता,
इसी लिए सब
सहता रहता,

निर्भयता है
मेरी साका ।
मैं ही जग को—
विजय पताका ।

सुनसान डगर का मैं राही

सुनसान डगर का मैं राही ।
मंजिल का मुझको चाह नहीं
बाधाओं की परवाह नहीं,

हँसते हँसते सब भूल गया—
आई चारों ओर तबाही ।
सुनसान डगर का मैं राही ॥

अब नहीं किसी पर रोष मुझे,
है अपने पर संतोष मुझे,

यह तो सब रात ही है—
किसकी होती कब मनचाही ?
सुनसान डगर का मैं राही ॥

मैं अडिग सदा अपने पथ पर,
होता हूं कभी नहीं कातर,

आनेवाला ही पायेगा,
गीतों से मन नहलायेगा।

जिसकी इच्छा वो आ जाये
स्वर मे प्रीत मिलाकर गाये

इसका गुंजन मंगलमय है।
मानवता की जय निश्चय है।।

दाग हृदय का कितना गहरा
बैठ गया सांसों पर पहरा

बंधन में जकड़ा जकड़ा-सा
जीवन का प्रतिक्षण लगता है।
उखड़ा-उखड़ा मन लगता है॥

सांपों का है जोर भयंकर
महामरण का शोर भयंकर

जहर उगलता सा अब प्रतिपल —
सुरभित चन्दन वन लगता है।
उखड़ा-उखड़ा मन लगता है॥

उस दिन की है बात निराली

उस दिन की है बात निराली
सूख रही थी सब हरियाली
ऐसे में ही आंख मिली थी
सहसा कोई कली खिली थी
सब कुछ का था नूतन परिचय
आया था मादक अरुणोदय
सांस तेज थी हृदय लगा था
पहला पहला दर्द जगा था

× ×

किन्तु आज सब बीत गया है
पनघट का रस रीत गया है
जब तो वर्षा भी जब आती
पिंजड़े की चिड़िया अकुलाती

भूतल चाहे भरा-भरा हो,
कण-कण अवनि का निखरा हो
सब मे रहती घनी उदासी,
सागर मे ज्यो मीन पियासी

× ×

लेकिन इसका अंत निकट है
कटने ही वाला संकट है
आँखों मे आभा जगती है
नई किरण की लौ जगती है
फिर तो मेरा फूल खिलेगा
मन मानस का मीत मिलेगा
तप का सब प्रतिदान मिलेगा
चातक को वरदान मिलेगा।

चाँदनी मुस्का रही है

चाँदनी मुस्का रही है।

चाँद ऊपर खिलखिलाता,
सिन्धु मन में ज्वार आता
रश्मि रथ पर आज कोई नेह की धुन गा रही है।
चाँदनी मुस्का रही है॥
दृग कुमुदिनी के खुले हैं
ताप अन्तर के धुले हैं
याद में रोती चकोरी आग निर्भय खा रही है॥
चाँदनी मुस्का रही है॥
मन्द तारों की छटा है
दूर आँखों से घटा है
फूल की मुस्कान ले अनुरागिनी हो आ रही है॥
चाँदनी मुस्का रही है॥

कौन ऐसे मे अकेले—
चांदनी का भार झेले
प्राण के हर तार पर अब वेदना भ्रकुना रही है ॥
चादनी मुस्का रही है ॥

गूंजती है रागिनी

गूंजती है रागिनी।

कौन वंशी टेरता है
गीत का स्वर घेरता है
आ रही है ध्वनि कहाँ से—
आज यह उन्मादिनी।
गूंजती है रागिनी॥

है सुवासित भूमि अम्बर,
है प्रकाशित नेह का घर,
दूर नन्दन कुञ्ज से ही
आ रही है चांदनी।
गूंजती है रागिनी॥

कौन विरही रो रहा है,
भार उर पर ढो रहा है,

वज्र का उर वेधती है—
एक कोमल सी कनी।
गूंजती है रागिनी॥

भ्रमर फूलों पर विहंसता,
फून सौरभ स्वास कसता
प्राण के हर तार पर सज—
जा रही है कामिनी।
गूंजती है रागिनी॥

तुमको भी जो छोड़ चले थे

तुमको भी जो छोड़ चले थे—

जो थे अपनी धुन में खोये
रखते मन के हार पिरोये,
वे भी लौट रहे हैं देखा—
जो सबसे मुँह मोड़ चले थे।
तुमको भी जो छोड़ चले थे॥

जिनको बस अपना मतलब था,
ध्यान उन्हें किसका कुछ तब था,
वे भी सबके दुख में रोते—
जो सब नाता तोड़ चले थे।
तुमको भी जो छोड़ चले थे॥

सरिता की धारा अब बदली
नई भावना उर में मचली,

वे भी मित्र बने जन-जन के—
जो सब साध मरोड चले थे।
तुम को भी जो छोड चले थे॥

आज मुझको गीत गाने दो

आज मुझको गीत गाने दो।

कालिमा की वारुणी पीकर—
रात हंसती है हंस जी भर
इस तिमिर का अन्त निश्चय है एक दीपक बस जलाने दो।
आज मुझको गीत गाने दो ॥

घोर झंझा आ रहा है जो—
प्रलय भीषण छा रहा है जो—
नियति की यह क्रूरता भी सब शांत होगी स्वर जगाने दो।
आज मुझको गीत गाने दो ॥
कौन पथ पर आज आयेगा—
विघ्न की चट्टान लायगा,
एक क्षण भी तुम न बोलो अब, इस कलुष को लो मिटाने दो।
आज मुझको गीत गाने दो ॥

आज विह्वल मन हमारा

आज विह्वल मन हमारा।

सिंधु में है ज्वार उठता
हर लहर से प्यार उठता,

बह चली है आप अपने—
स्नेह की अनमोल धारा।
आज विह्वल मन हमारा॥

दूर नभ में झिलमिलाते,
रूप जीवन का दिखाते,

ज्योति का आधार उज्ज्वल—
नील नभ का सब सितारा।
आज विह्वल मन हमारा॥

हर किरण में प्यास जगती,
आग सागर में सुलगती;

लग रहा बेचैन तुमको—
ढूँढता है विश्व सारा।
आज विह्वल मन हमारा॥

कौन जी को शांति देगा,
मृत्तिका को कान्ति देगा,
इस तरी को कौन देगा—
फूल से सज्जित किनारा।
आज विह्वल मन हमारा।

आज खुशी की यह वेला है

आज खुशी की यह वेला है।

नया साल है, वर्ष नया है
नई खुशी है हर्ष नया है
तनिक भूल जा वह पिछला दिन—

जो तुमने संकट झेला था।
आज खुशी की यह वेला है॥

आओ हम सब खुशी मनायें,
पुण्य-पर्व में नाचें-गावें,
सत्य करो उन सब सपनों को—

लगा हुआ जिनका मेला है।
आज खुशी की यह वेला है॥

बरसो बादल बरसो पानी,
लहरादो फिर आंचल धानी,

धरती पर है घोर विषमता,
शांति कुञ्ज में ही मन रमता,
जीवन का अनुभव कहता है—
शान्त सरोवर का जल निर्मल।
जाग रही अन्तर में हलचल।

दुनिया भर का व्यंग सहा, पर

दुनिया भर का व्यंग सहा, पर—
कहीं न मुझको प्रीत मिली ।।
फूल खिला, कण-कण मुसकाया,
लेकिन मेरा मीत न आया,
मेरे दिन को अंधियारों से—
अब तक कभी न जीत मिली ।
दुनिया भर का व्यंग सहा, पर—
कहीं न मुझको प्रीत मिली ।।
हंसता भूतल पर पुनवासी
आंख फिर भी अब तक प्यासी,
आंसू पीकर प्यास मिटा लूं—
ऐसी कहीं न रीत मिली ।
दुनिया भर का व्यंग सहा पर—
कहीं न मुझको प्रीत मिली ।।

मैं छोटा बादल का टुकड़ा,
विद्युत मेरे मन का दुखड़ा,
मुझसे केवल इस दुनिया को—
छलना सहज सभीत मिली।
दुनिया भर का व्यंग सहा, पर—
कहीं न मुझको प्रीत मिली॥
जिससे दूर रहा करता हूँ
जिसका त्याग सदा करता हूँ
मुझको मेरे पथ पर जग से—
केवल वही प्रनीत मिली।
दुनिया भर का व्यंग सहा पर—
कहीं न मुझको प्रीत मिली।

मौन मेरा गान क्यों था ?

मौन मेरा गान क्यों था ?

पूर्णिमा को था कुतूहल
थी निशा में एक हलचल,

चाँद का मुख म्लान क्यों था ?
मौन मेरा गान क्यो था ?

शुष्क खण्डहर रो रहे थे,
गीत पिक के सो रहे थे,

कण्ठ पर अभिमान क्यों था ?
मौन मेरा गान क्यों था ?

मधुर बन्धन मे बधा था
वेदना का स्वर सधा था,

चाहता मधुपान क्यो था ?
मौन मेरा गान क्यो था ?

दीप की लौ टिमटिमाई
रात थोड़ी मुसकुराई,

शलभ का बलिदान क्यों था ?
मौन मेरा गान क्यों था ?

आज संध्या ढल रही है

आज संध्या ढल रही है।

व्योम लोहित लग रहा है
पास हो तम जग रहा है
लौटते हैं नीड़ में खग
सांस धीरे चल रही है।
आज संध्या ढल रही है।

शान्त कोलाहल दिवस के
रिक्त-से हैं कलश रस के
व्यग्र दिन की वेदना तक—
आप अपने गल रही है।
आज संध्या ढल रही है॥

एक तारा गा रहा है
आज कोई आ रहा है,

भूमि की आराधना को—
रात मानो घुल रही है।
आज संध्या ढल रही है॥

भीगती है रात काली,
नेह का है पात्र खाली,

किन्तु फिर भी शुष्क उर में—
रागिनी सी पल रही है।
आज संध्या ढल रही है॥

कितनी काली

कितनी काली
है यह रात।

नही हाथ को
हाथ सूझता,
अपने से ही
आप जूझता
कालिख लगती
कितनी गहरी,
दिशा दिशा तक
लगती बहरी,
दूर बहुत ही
लगता प्रात।
कितनी काली
है यह रात॥

कोई भी अब
पास नहीं है
वश में अपनी
सांस नहीं है
झर-झर झरती
नभ से ज्वाला
सूख गया है—
रस का प्याला
जलते जीवन
के उल्लास ।
कितनी काली
है यह रात ॥
सुनता कोई
नहीं किसी की,
पूरी होता—
कथा न जी की
फिर भी कैसे
मन जीता है
मन ने रखी
मन की बात ।

कितनी काली
है यह रात ॥
सूना पथ है
सम्बल दे दो;
पथिक अकेला
कुछ बल दे दो,
यों तो ऐसे
टूट चुका है,
अपनों से भी
छूट चुका है,
नहीं सहेगा
अब आघात ।
कितनी काली
है यह रात ॥

निकला एक सितारा

निकला एक सितारा।

नभ का जितना विस्तृत आँगन,
कुसुमित सुरभित जीवन उपवन,

कल-कल सहज प्रवाहित मेरे—
नभ गंगा की धारा।
निकला एक सितारा।

ऊपर जितना सजा गगन है
उधर उतना भू का मन है,

प्रतिक्षण प्रतिपल आँखों में है—
दिखता रूप तुम्हारा।
निकला एक सितारा।

चंचल जितना जल सरिता का
भाव विमल मन की कविता का

गति मति के आगे रहता है—
सत्य एक ध्रुव-तारा।
निकला एक सितारा।

जब भी बीच भंवर में बढ़ता,
गिरि के उच्च शिखर पर चढ़ता,
पदा तुम्हारा मुझे प्राप्त है—
निश्चित एक सहारा।
निकला एक सितारा॥

मन मारे दीपक जलता है

मन मारे दीपक जलता है।

ज्योति शिखा की मन्द-मन्द है
द्वार विभा का बन्द बन्द है;
देख रहे सब अपनी ज्वाला में घरबार पिघलता है।
मन मारे दीपक जलता है॥

आघातों से दिल टूटा है
पर्वत से निर्झर फूटा है;
आहों के सागर में पड़कर निर्मम पत्थर भी गलता है।
मन मारे दीपक जलता है॥

खुलकर हँसते सुमन सवेरे
भौंरों के दल रहते घेरे
साँझ उतर कर जब आती है चढ़कर सूरज भी ढलता है।
मन मारे दीपक जलता है।

अन्त तिमिर का होगा निश्चय,
मचल रहा [illegible] अरुणोदय

एक किरण की प्रत्याशा में पंथी भी पथ पर चलता है।
मन मारे दीपक जलता है॥

कैसा यह अनुराग ?

कैसा यह अनुराग ?

एक तरफ जलती है ज्वाला।
और दूसरी ओर हृदय की—
शीतलता की मादक हाला।
शलभ झुलसता, ज्वलित शिखा से गूंजा दीपक-राग।
कैसा यह अनुराग ?

चांद बिहंसता नभ में ऊपर।
रश्मि किरण में मुग्ध चकोरी—
चुगती ज्वाला कण इस भू पर।
एक तरफ है ग्रहण दूसरी ओर किसी का त्याग।
कैसा यह अनुराग ?

फेंक रहा है रह-रह पासा
मन की फिर भी बात न होती—
पानी में भी जीवन प्यासा।

तट पर फूल खिले सागर के ऊपर केवल भाग ।
कैसा यह अनुराग ॥
निर्ममता का अन्त नही है ।
पतझर भी हसता है लेकिन
गाता यहाँ वसन्त नही है ।
कहो किसी का मानव खिलता रो-रो उठता फाग ।
कैसा यह अनुराग ॥

गीतों को वरदान चाहिए

गीतों को वरदान चाहिए।
विमल हृदय का दान चाहिए॥

ये निष्कलुष सिंधु के मोती
इसमें अनुपम आभा सोती

इसकी विमल ज्योति को छू के—
जन-जन का सम्मान चाहिए।
गीतों को वरदान चाहिए॥

कभी न इसकी कथा पुरानी
बन्द न होगी कभी कहानी

इसके चरण चरण की गतिमय—
जीवन का अभिमान चाहिये।
गीतों को वरदान चाहिए॥

ज्वार सिंधु के अगम अपरिमित,
उच्छल लहरों के बस सीमित

नई उमंगों को जब पावन—
भावों का जलयान चाहिये ।
गीतों को वरदान चाहिए ॥

पग-पग पर पर्वत है दुर्गम
तिमिर चतुर्दिक फैला विषम

लक्ष्यमुखी जीवन को निर्भय—
बढ़ने का अभियान चाहिए ।
गीतों को वरदान चाहिए ॥
विमल हृदय का दान चाहिए ॥

गाने वाला आ न सकेगा

गाने वाला आ न सकेगा।

जिसको सदा बुलाता रहता—

शायद आ न सकेगा।

अपनी अपनी सबकी उलझन,

चरणों में ममता का बंधन,

जिसको सुनना चाह रहा मैं—

शायद गा न सकेगा।

छूले जगमग कूल किनारा,

बरसे भू पर रस की धारा

अपने नभ में जिसे चाहता—

शायद छा न सकेगा

धरती का कण प्यासा प्यासा,

पूरी हुई कब किसकी आशा ?

कोई तम के वक्षस्थल पर—
चित्र बना न सकेगा।
जिसका सदा बुलाता रहता—
शायद आ न सकेगा।।

हम दोनों का इस धरती पर

हम दोनों का इस धरती पर—
है नूतन संबंध ॥
जाने कब से लहर-लहर को
चूम रही है।
जाने कब से सृष्टि कील पर
घूम रही है
ज्ञात नहीं कब से हम दोनों—
भूतल पर निर्बन्ध।
हम दोनों का इस धरती पर—
है नूतन सम्बन्ध ॥
ज्ञात कब से कली-कली पर
भौंरा गाता
जाने कबसे चातक अपनी
टेर सुनाता

भावों से उद्वेलित होता—
जग तरतर स्वच्छन्द ।
हम दोनों का इस धरती पर—
है नूतन सम्बन्ध ॥

× ×

जहां कहीं भी मेह गगन का
रस बरसाता
जहां कहीं हरियाली आती—
मन मुस्काता।
हम दोनों का नेह बना है—
मादक सुरभि सुगंध ।
हम दोनों का इस धरती पर—
है नूतन सम्बन्ध ॥

रस मे आंख पगी है

रस में आंख पगी है।

उस दिन देखा था सपने में
अपने से ही थे अपने में,

बीत गये दिन कितने लेकिन—
अब तक टेक टगी है।
रस में आंख पगी है।

जाते जाते तुम आ जाओ
सूखे रूखों पर लहराओ

सांसों की हर आहट तक पर—
मेरी आस जगी है।
रस में आंख पगी है।

जाने कब से झूम रहा हूं
चरण चरण पर घूम रहा हूं

कौन बताये इन दानों को—

[illegible]

[illegible]

सब कुछ अपने करना होगा

सब कुछ अपने करना होग ।

कम-प्रधान विश्व को माया

सत्य स्वय लगतो है छाया

नही चाहकर मी अवन पर—

भार विश्व का धरना होगा ।

सब कुछ अपन करना होगा ।

क्षरा क्षरा मे विह्वनता बढती,

मन की करुणा दृग पर चढ़ती

साधन का पतवार साथ ले—

गहन सिन्धु को तरना होगा ।

सब कुछ अपन करना होगा ॥

सूख गये दृग आह नही है

चलने को भा राह नही है,

चाह तुम्हारी जब जग आये—

जीवन में भी मरना होगा।

सब कुछ अपने करना होगा।

उखड़ रहा सब मेला

उखड़ रहा सब मेला।

बहुत देर से देख रहा हूँ—
जाने जाने का जमघट है
नया-नया बाजार लगा है—
आपा धापी या छटपट है,

सभी तरफ हो हल्ला होता—
मुझ-सा कोई नहीं अकेला।
उखड़ रहा सब मेला।

कोई बन्दर नचा रहा है
कोई रचता खेल तमाशा
कोई चर्खी पर चढ़ता है
कोई खाता कहीं पताशा,

कोई मोटर हाँक रहा है—
कोई चला रहा है ठेला।
उखड़ रहा सब मेला।

इस मेले का हाल यही है—
बहुत जोर से लग जाता है,
दो ही दिन रहता है लेकिन—
शाश्वत जैसा लग जाता है

सत्य मान कर ही सब चलते—
ऐसा है यह खेला।
उखड़ रहा सब मेला॥

दो ही क्षण में सूनी सूनी
सारी दुनियां यहां लगेगी
कोई लाख कहेगा लेकिन
आंख किसी की नहीं लगेगी

मिट जायेगा क्षण दो क्षण में—
जग का सभी झमेला।
उखड़ रहा सब मेला॥

राग रंग की

राग रंग की—
रैना छाई
कलियों पर
निखरी अरुणाई

सब कहते हैं—
पहला स्वर है
समय सिन्धु की—
एक लहर है।

लेकिन यह भी
दो क्षण ठहरा
मिटने वाला
पल है चल

यह भी है पर
नहीं टिकेगा

इसका भी दुख
सब बिसरेगा

यही जगत की
रीत पुरानी,
यही भुवन का
है आकर्षण,

इसी लहर पर
एक सहारे,
बैठ गये हैं
सब बनजारे,

जिसको जब तक
ठौर मिला है
जिसको यह सिर—
मौर मिला है;

तब तक उसकी
बात रहेगी
सारी दुनिया
कथा कहेगी

लेकिन सब में
कौन प्रश्न है
उसके आगे—
कौन सक्षम है ?

वह आयेगा
निश्चय मानो
अभी समय है—
पग पहचानो

इसी लिए कहता
हूँ जागो
अपना आलस
तन्द्रा त्यागो

अरुणोदय को
देखा भाई
सुरभिमयी उष
मुस्काई ।

अपने पन की चाह नही है

अपने पन की चाह नही है।
मुझको अब कोई क्या देगा?
कौन हृदय-पट पर उतरेगा?

काटो से अब कष्ट न कुछ भी—
फूलो की परवाह नही है।
अपने पन की चाह नही है॥

टूट गया बन्धन का घेरा
किन्सा मन में मिलन सवेरा

एक डोर धर चरण बढ़ाया—
और दूसरी राह नही है।
अपने पन की चाह नही है।

एक हुए सुख-दुख के लोचन
सत्य बना जीवन-आराधन,

मन में कोई राग न बाकी —
किसी तरह का दाह नहीं है।
अपने मन की चाह नहीं है।

राह

मेरी अपनी राह रहे।

चलूँ न मैं दुनिया के जैसा,
रहूँ सदा अपने ही जैसा
सदय प्रलय रहे पर इसका—

मुझे न कुछ परवाह रहे।
मेरी अपनी राह रहे॥

भेद-भाव कुछ रहे न मन में,
विकल प्राण हो जग क्रन्दन में,
सुखद शांति फले धरती पर—

कहीं न कोई दाह रहे।
मेरी अपनी राह रहे॥

छलके कभी न दृग लालों पर,
भय से हो मन कभी न कातर,
काँट करें न विचलित पग को—

फूलों की नहीं चाह रहे।
मेरी अपनी राह रहे॥

अब विषमता सब मिटाओ।
प्रेम की भाषा पढ़ाओ॥

डोल रही पुरवाई

डोल रही पुरवाई।

अपने ही जब हैं परदेशी

भाई है क्यों बिछुड सुकेशी,

भींगा-भागी हवा न जाने—

कौन सदेशा लाई।

डोल रही पुरवाई॥

सिहर रहा है तरु-तरु तृण-तृण,

घर बाहर का क्षण क्षण कण-कण

किसके स्वागत में पुलकित है—

सावन की तरुणाई।

डोल रही पुरवाई॥

झर झर-झर झरता है अम्बर

गिरि से उतर रहा है निर्झर

धरती धरती पर जीवन को—

उवरता लहराई।

डोल रही पुरवाई॥

आज तपस्या स्वयं खिली है
शीतल मन को शांति मिली है
गहन तमिस्रा में जागृति को—
लहर-लहर मुसकाई।
डोल रही पुरवाई॥

कितना छोटा घर है

कितना छोटा घर है।
विस्तृत धरती बटी बटी-सी,
अलग-अलग छाया सीपी-सी;
एक भुवन में अलग अलग सबके गीतों का स्वर है।
कितना छोटा घर है॥

दीवारों से हवा बटी है
क्यारों में धारा सिमटी है,
प्रकृति-नटी को सीमित करने में मानव तत्पर है।
कितना छोटा घर है॥

ऊपर व्योम वितान तना है,
सभी तरह से अगम बना है,
उस असीम का चना तौलन लघु विहगों का पर है।
कितना छोटा घर है॥

इस अथाह सागर मे मानव
ढूंढ रहा है मोती अभिनव
मन मे है निर्बंध उमगें साधन बंधन भर है।
कितना छोटा घर है।